THE TIMES OF INDIA

Date:14-11-23

The Giving Half

That most organs are donated by women but received by men reveals starkly unequal Indian families

TOI Editorials

Of the many statistics that establish how stark is the gender inequality prevailing across the country, the one on living organ donations stands out. Because it sort of puts a number on how strong the male-female hierarchy is within the Indian family. Remember that in India live organ donations are mostly within the family, with an accompanying "family structure certificate". So when 4 of 5 living organ donors are women while 4 of 5 recipients are men, this reflects an overwhelmingly one-sided flow of organs from mothers and wives to husbands and sons. See this in the context of 93% of total organ donations in the country being from living donors.

A troubling but socially accepted explanation of this phenomenon is that men are the breadwinners, the financial responsibilities they are carrying for the family make their health a higher priority. But there is no data to establish how many of the male recipients are actually the 'breadwinners'. Even if such data existed and was conclusive, it would still mean that we as a society are saying that the lives of mothers and wives who are not breadwinners are not worth saving. Women are internalising this horrific pecking order.

One doctor told TOI that men often take a kidney from their wife even if a brother would be an ideal donor, another that in 15 years that she has been working in this field only once did a husband come forward to donate his organ to his wife. In this deeply unequal environment it is almost impossible to separate women 'volunteering' from women being 'coerced'. Institutions and physicians should go the extra mile to counsel the donors and judge whether they are exercising 'free choice'.

दैनिक भास्कर

Date:14-11-23

कितनी गहरी है शहरी नागरिक अचेतना

संपादकीय

देश की राजधानी दिल्ली की प्रति व्यक्ति आय, शिक्षा का स्तर, शहरीकरण और सूचना के साधनों की उपलब्धता औसत भारतीय से काफी ज्यादा है लेकिन दीपावली के दिन तमाम हिदायतों, यहां तक कि सुप्रीम कोर्ट के आदेशों के बावजूद करोड़ों लोगों ने इतनी अतिशबाजी की कि अगली सुबह वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) 900 पहुंच गया। मानव स्वास्थ्य के लिए 200 से ऊपर एक्यूआई नुकसानदेह माना जाता है और 300 से ऊपर खतरनाक । विश्व वायु गुणवत्ता रिपोर्ट 2023 के अनुसार दिल्ली इस वर्ष दुनिया के चार सबसे प्रदूषित शहरों में से एक है। जहां एक ओर पंजाब और हरियाणा में धान की पराली जलाने को दिल्ली में प्रदूषण का दोषी माना जा रहा है, लेकिन आतिशबाजी से होने वाले प्रदूषण ने हालत बद से बदतर कर दी। किसानों का पराली जलाना गलत है पर इसके पीछे आर्थिक कारण और अगली रबी की फसल के लिए जल्दी खेत तैयार करने की मजबूरी है। लेकिन तथाकथित पढ़े-लिखे समाज ने भी गंभीरता परिचय नहीं दिया। कई सोसाइटियों में पटाखे फोड़ने के लिए एक जगह निर्धारित की गई। शायद वे निवासी यह समझ रहे थे कि एक जगह 'हर्ष अतिशबाजी' से वायु की गुणवत्ता पूरी सोसाइटी में नहीं खराब होगी । पर्यावरण को लेकर इतनी लापरवाही चिंताजनक है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date:14-11-23

अनियंत्रित निर्माण

संपादकीय

हिमालय के ऊपरी हिस्से में एक सुरंग के निर्माण के दौरान उसके ढह जाने से 40 श्रमिक फंस गए और उन्हें बचाने के प्रयास किए जा रहे हैं। सरकार की चार धाम राष्ट्रीय राजमार्ग परियोजना का यह हिस्सा उत्तरकाशी क्षेत्र में ब्रह्मखाल और यमुनोत्री के बीच स्थित है। यह मानने की पर्याप्त वजह है कि इस घटना में किसी तरह की जनहानि नहीं होगी और कामगार इस मुश्किल परिस्थिति से सकुशल निकल आएंगे लेकिन यह एक और चेतावनी है कि देश के बड़े पहाड़ी इलाकों में अधोसंरचना परियोजनाओं को राजनीतिक कारणों से बढ़ावा दिया जा रहा है तथा इस दौरान तकनीकी और पर्यावरण संबंधी आकलन को बिल्कुल ध्यान में नहीं रखा जा रहा है। ऐसा आकलन अहम काम को टालने का जरिया नहीं है। बल्कि इनकी मदद से यह सुनिश्चित किया जाता है कि इन कठिन क्षेत्रों में होने वाला निर्माण वहां काम कर रहे लोगों

या बाद में उसका इस्तेमाल करने वाले लोगों के लिए किसी तरह जोखिम भरा साबित न हो। ये इलाके भूस्खलन, अचानक आने वाली बाढ़ और यहां तक कि भूकंप के जोखिम वाले होते हैं। यहां होने वाले अधोसंरचना निर्माण का पर्याप्त मजबूत होना आवश्यक है। जलवायु परिवर्तन के इस दौर में ये निर्माण कई तरह के खतरों की जद में रहते हैं। जलवायु परिवर्तन के कारण न केवल मौसम में अतिरंजित बदलाव हुए हैं बल्कि बादल फटने की घटनाएं भी घटी हैं।

इस संदर्भ में चार धाम राजमार्ग जैसी विशालकाय निर्माण परियोजनाओं को तब तक खतरनाक माना जाना चाहिए जब तक कि उन्हें जलवायु वैज्ञानिकों और पारिस्थितिकी विशेषज्ञों की निगरानी में ध्यानपूर्वक तैयार नहीं किया गया हो। प्रत्येक कुछ सप्ताह में ऐसी खबर आती है कि इस क्षेत्र में किसी न किसी बड़ी परियोजना के साथ कुछ न कुछ घटित होता है। अभी कुछ सप्ताह पहले ही असम और अरुणाचल प्रदेश की सीमा पर सुबनसिरि लोअर जलविद्युत परियोजना को एक भीषण भूस्खलन का सामना करना पड़ा जिसके चलते इस क्षेत्र में निर्माण कार्य खतरे में पड़ गया। भूस्खलन के कारण वह इकलौती सुरंग बंद हो गई जिसका इस्तेमाल यह सुनिश्चित करने के लिए किया जा रहा था कि नदी का पानी आसपास के उस इलाके में पहुंचे जहां बांध का निर्माण हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि भूस्खलन के कारण आठ अलग-अलग नहरें भी प्रभावित हुईं जिन्हें रास्ता बदलने के लिए इस्तेमाल किया जाना था।

अक्टूबर के आरंभ में तीस्ता नदी के ऊपरी इलाके में अचानक आई बाढ़ के कारण चुंगथांग बांध के कुछ हिस्से बह गए और तीस्ता वी पावर स्टेशन (खबर के मुताबिक एक जान भी गई) को बंद करना पड़ा। तीस्ता-3 और तीस्ता-4 को गाद और कीचड़ से नुकसान पहुंचा और तीस्ता-6 के निर्माण को काफी नुकसान पहुंचा। राष्ट्रीय जल विद्युत निगम (एनएचपीसी) ने एक नियामकीय फाइलिंग में बताया कि उसे 233.56 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ है। इससे पहले गर्मियों में केंद्रीय बिजली प्राधिकरण ने अनुमान लगाया था कि जुलाई में आई बाढ़ के कारण जलविद्युत क्षेत्र को 164 करोड़ रुपये का नुकसान हुआ।

अब वक्त आ गया है कि हम एक कदम पीछे लेकर उस प्रक्रिया का दोबारा आकलन करें जिसके माध्यम से ऐसी परियोजनाओं को मंजूर किया जाता है। चार धाम जैसी सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण परियोजनाओं के लिए राजनीतिक इच्छाशक्ति इस बात का विकल्प नहीं हो सकती है कि वे तकनीकी रूप से व्यावहारिक हैं भी या नहीं। यह आकलन करना भी आवश्यक है कि ऐसे निर्माण के लिए इंजीनियरिंग कौशल का आकलन किया जाए तथा यह देखा जाए कि क्रियान्वयन करने वाली एजेंसियां इसके योग्य हैं या नहीं। खासतौर पर जलवायु परिवर्तन के कारण आई अतिरिक्त जटिलताओं को देखते हुए। इन तमाम बुनियादी बातों के बीच हिमालय क्षेत्र की पारिस्थितिकी संवेदनशीलता की चिंताओं को ध्यान में रखना आवश्यक है। यह क्षेत्र एक विशिष्ट जैवीय इलाका है जिसे विशेष देखभाल और संरक्षण की आवश्यकता है।

Date:14-11-23

कार्बन व्यापार का नुकसानदेह पहलू

सुनीता नारायण, (लेखिका सेंटर फॉर साइंस ऐंड एनवायरनमेंट से जुड़ी हैं)

इस वर्ष दुबई में आयोजित होने वाले संयुक्त राष्ट्र जलवायु सम्मेलन (सीओपी28) में कार्बन बाजार के लिए नियम-कायदे तय करने से संबंधित विषय पर चर्चा की जाएगी। विश्व के नेताओं को स्वैच्छिक कार्बन बाजार की त्रुटियों से सबक लेने की आवश्यकता है ताकि नई बाजार व्यवस्था में पिछली गलतियों की पुनरावृत्ति नहीं हो पाए। दुनिया में व्यापक बदलाव लाना इस नई व्यवस्था का लक्ष्य है। पाक्षिक पत्रिका 'डाउन टू अर्थ' और सेंटर फॉर साइंस ऐंड एनवायरनमेंट ने जब कार्बन व्यापार का विश्लेषण किया तो कुछ असहज बातें सामने आईं जिनके बाद बदलाव लाने की तरफ प्रसास करना आवश्यक हो गया है।

हम पाते हैं कि वर्तमान कार्बन बाजार दुनिया में हानिकारक गैसों का उत्सर्जन और बढ़ा सकता है। कार्बन क्रेडिट खरीदने वाली कंपनियों एवं इकाइयों ने उत्सर्जन तो कम नहीं किए हैं बल्कि इसके उलट और बढ़ा दिए हैं। इसके पीछे उनका तर्क है कि उन्होंने कार्बन क्रेडिट खरीद रखे हैं। परंतु, इन क्रेडिट के लाभ बढ़ा-चढ़ा कर बताए गए हैं या यूं कहें कि वास्तविक लाभ की स्थिति है ही नहीं। उत्सर्जन में कमी भी सांकेतिक ही है। यह एक प्रकार से दोहरी समस्या है। जलवायु परिवर्तन का संकट झेल रही दुनिया के लिए इस कठिन परिस्थिति से निकलना परम आवश्यक है। इस दिशा में सर्वप्रथम एवं स्वाभाविक कदम बाजार में पारदर्शिता लाने से जुड़ा है। जब मेरे सहकर्मियों ने इस संबंध में सूचनाएं मांगी तो उन्हें कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। उन्हें परियोजना स्थलों पर जाने से पहले गैर-खुलासा समझौतों पर हस्ताक्षर करने के लिए कहा गया। पेरिस की एक निवेश कंपनी ने मेरे सहकर्मियों को तो यह तक कहा कि भारत के गांवों में यात्रा करना काफी खतरनाक है। एक अन्य कंपनी ईकेआई एनर्जी सर्विसेस ने तो यह कह दिया कि वह 'साइलेंट पीरियड' (वह अवधि जिसमें कोई कंपनी विश्लेषकों या मीडिया से संवाद नहीं करती है) में है।

दूसरा कदम यह होगा कि बाजार के उद्देश्य-स्वैच्छिक, द्विपक्षीय या बहुपक्षीय-निर्धारित किए जाएं और उसी अनुसार नीति-नियम तय किए जाएं। अगर कार्बन बाजार का उद्देश्य उन परियोजनाओं में निवेश करना है जिसके बाद दुनिया के विभिन्न हिस्सों में उत्सर्जन में कमी आएगी तो उस स्थिति में कार्बन बाजार परियोजना की वास्तविक लागत के भुगतान पर आधारित होना चाहिए। वर्तमान समय में बाजार अक्षय ऊर्जा परियोजना या बायोगैस परियोजना की लागत की तुलना में कम भुगतान करता है। गरीब देश इस बाजार में उत्सर्जन करने वाले धनी देशों को एक तरह से सब्सिडी का भुगतान कर रहे हैं।

तीसरी बात, ऐसा लगता है कि बाजार केवल परियोजनाओं के विकासकर्ताओं , सलाहकारों और अंकेक्षकों के पक्ष में ही कार्य कर रहा है। समुदायों के विकास के लिए कोई रकम नहीं बचती है। इसका मतलब यह भी निकलता है कि उत्सर्जन कम करने के प्रयासों में उनकी भागीदारी का कोई वास्तविक आधार नहीं रह जाता है। कार्बन बाजार को समुदायों के साथ सालाना आधार पर आर्थिक संसाधन साझा करना चाहिए और स्वतंत्र रूप से इसकी पुष्टि भी होनी चाहिए। अगर घरेलू उपकरणों-इस मामले में नए कुकस्टोव की बात करते हैं। कुकस्टोव का बाजार समय के साथ तेजी से बढ़ रहा है और इसका कारण भी स्पष्ट है क्योंकि परियोजनाओं का विकास करने वाली इकाइयों के लिए काफी फायदेमंद है। कुकस्टोव पर आने वाली लागत डेवलपर द्वारा परियोजना की 5-6 वर्ष की अवधि में अर्जित कमाई का मात्र 20 प्रतिशत है। कार्बन क्रेडिट के लाभ के नाम पर परिवारों को एकमात्र कुकस्टोव ही दिए जाते हैं। इसे दूसरे रूप में कहें तो कार्बन राजस्व का 80 प्रतिशत हिस्सा मुनाफे के रूप में गटक लिया जाता है। कई स्थानों पर तो हमने पाया है कि गरीब लोगों ने वास्तव में इन कुकस्टोव के लिए भुगतान तक किए हैं।

अब कार्बन उत्सर्जन में कटौती के स्वाभाविक प्रश्न पर आते हैं जिसे आधार बना कर कंपनियों ने उत्सर्जन में कमी के बजाय इसे और बढ़ा दिया है। घरेलू उपकरण कार्यक्रम के मामले में कंपनियां स्टोव के वितरण के आधार पर कार्बन उत्सर्जन में कमी की गणना करती हैं। इस बारे में भी काफी कम जानकारी है कि स्टोव इस्तेमाल भी हो रहे हैं या नहीं। हमारे शोध में पता चला है कि लोग खाना पकाने के लिए कई स्रोतों का इस्तेमाल करते हैं। लिहाजा, प्रोजेक्ट डेवलपर, सत्यापनकर्ताओं, अंकेक्षकों और निबंधकों की भारी तादाद के बावजूद प्रोजेक्ट डेवलपर उत्सर्जन में कमी को बढ़ा-चढ़ा कर बताते हैं। एक सबक तो यह अवश्य लिया जा सकता है कि परियोजना का ढांचा सरल रहना चाहिए और परियोजनाओं का नियंत्रण सार्वजनिक संस्थानों एवं लोगों के पास रहना चाहिए।

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि उत्सर्जन में कमी का श्रेय किसे दिया जाना चाहिए? यह कोई काल्पनिक नहीं बल्कि वास्तविक प्रश्न है। भारत में बिजली की कुल आवश्यकता का 50 प्रतिशत हिस्सा गैर-जीवाश्म स्रोतों से प्राप्त करने के लिए जल-विद्युत सहित अक्षय ऊर्जा के प्रत्येक मेगावॉट हिस्से पर विचार एवं गणना करने की जरूरत है। लगभग 675 भारतीय अक्षय ऊर्जा परियोजनाएं 26.8 करोड़ कार्बन क्रेडिट के लिए वेरा और गोल्ड स्टैंडर्ड में पंजीकृत की गई हैं। 26.8 करोड़ कार्बन क्रेडिट में 14.8 करोड़ की अवधि समाप्त हो चुकी है या इनके लिए दावे किए जा चुके हैं। भारत के लिए राष्ट्र निर्धारित योगदान (एनडीसी) का आकलन करने के लिए इन कार्बन क्रेडिट पर कैसे विचार किया जा सकता है? या फिर इन पर विचार किया जाना चाहिए? क्या इससे दोहरी गणना की स्थिति नहीं पैदा हो जाएगी?

वास्तविकता यह है कि वर्तमान स्वैच्छिक कार्बन बाजार सहूलियत पर आधारित है। इसका अभिप्राय है कि दुनिया के देश अपनी सुविधा के अनुसार उत्सर्जन में कमी के आसान विकल्पों का इस्तेमाल कर चुके हैं। इसका सीधा मतलब यही है कि दुनिया के देश उत्सर्जन में कमी करने के लिहाज से तुलनात्मक रूप से कठिन प्रयासों में निवेश वहन नहीं कर पाएंगे। इससे उत्सर्जन जारी रहेगा और हमारा भविष्य चौपट हो जाएगा। उत्सर्जन रोकने के प्रयासों में विफलता किसी सूरत में स्वीकार नहीं की जा सकती।

जनसत्ता

Date:14-11-23

हादसों की सुरंग

संपादकीय

उत्तराखंड के उत्तरकाशी में निर्माणाधीन सुरंग का एक हिस्सा धंस जाने से चालीस मजदूर उसमें फंस गए हैं। हालांकि बताया जा रहा है कि सभी मजदूर जीवित हैं और उन्हें जल्दी ही सुरक्षित बाहर निकाल लिया जाएगा। मगर इस हादसे के बाद एक बार फिर उत्तराखंड में चल रहे विकास कार्यों और पहाड़ों को काट कर किए जा रहे निर्माण आदि को लेकर स्वाभाविक रूप से सवाल उठने लगे हैं। बताया जा रहा है कि इस साल मार्च में भी इस सुरंग का एक हिस्सा धंस गया था, मगर गनीमत है, उसमें कोई हताहत नहीं हुआ। सुरंग 'आल वेदर रोड' परियोजना का हिस्सा है, जो गंगोत्री और यमुनोत्री को जोड़ती है यह हादसा भूस्खलन की वजह से हुआ। सुरंग का करीब पंद्रह मीटर हिस्सा धंस गया। यह सुरंग

'आल वेदर रोड' परियोजना का हिस्सा है, जो गंगोत्री और यमुनोत्री को जोड़ती है। इस सुरंग की लंबाई करीब साढ़े चार किलोमीटर बताई जा रही है, जिसका करीब चार किलोमीटर हिस्सा बन कर तैयार हो गया है। इस सुरंग के बनने के बाद यात्रियों को छब्बीस किलोमीटर दूरी कम तय करनी पड़ेगी। दावा किया जा रहा है कि इससे लोगों का काफी वक्त और पैसा बचेगा। वस्तुओं और सेवाओं की पहुंच तेज होगी। सैलानियों और श्रद्धालुओं की तादाद बढ़ेगी और स्थानीय लोगों के लिए कारोबार तथा रोजगार के नए अवसर सृजित होंगे। विकास के रास्ते खोलने के लिए सड़कों का बनना बहुत जरूरी होता है

निस्संदेह बुनियादी ढांचे के विकास से आर्थिक तरक्की के रास्ते खुलते हैं। इसलिए पिछले कुछ सालों से सड़कों के विस्तार पर जोर दिया जा रहा है। उन्हें तेज रफ्तार और भारी वाहनों के लायक बनाया जा रहा है। चूंकि पहाड़ी इलाकों तक विकास कार्यों की पहुंच मंद पड़ी हुई थी, जिसके चलते वहां के लोगों के सामने रोजगार का संकट बड़ा मुद्दा था। खासकर उत्तराखंड में इसके चलते काफी बड़ी तादाद में पलायन होने लगा। इसके मद्देनजर वहां अनेक विकास परियोजनाओं को मंजूरी दी गई। कंपनियों को अपने उद्यम शुरू करने को प्रोत्साहित किया जाने लगा। बड़े पैमाने पर होटल खुले, पर्यटन को बढ़ावा देने की दृष्टि से अनेक गतिविधियां शुरू की गईं। मगर इन्हें तभी अधिक गति मिल सकती है, जब उन जगहों तक आवागमन सुविधाजनक हो। इसलिए सड़कों को विस्तृत करने की परियोजना शुरू की गई। 'आल वेदर रोड' सरकार की महत्त्वाकांक्षी परियोजना है। हालांकि तमाम पर्यावरणविद शुरू से विरोध करते रहे हैं कि इस परियोजना के चलते पहाड़ों पर भूस्खलन बढ़ेगा। उत्तराखंड के पहाड़ पहले ही जर्जर हो चुके हैं। हल्का कंपन भी उनके लिए खतरनाक साबित हो सकता है। इस तर्क के साथ परियोजना को रोकने की अदालत में गुहार लगाई गई, मगर वह विफल रही।

विकास परियोजनाओं और अंधाधुंध निर्माण कार्यों के चलते उत्तराखंड पिछले कुछ सालों में कई भयावह आपदाएं झेल चुका है। पहाड़ों के धंसने और दरकने से सैकड़ों लोगों को बेघर होना पड़ा है। इसके बावजूद हैरानी है कि सड़क बनाने की योजना पर पुनर्विचार करने की जरूरत नहीं समझी गई। सुरंग खोदने के लिए जिस तरह की भारी मशीनों का उपयोग किया जाता है, उनके कंपन से पूरा पहाड़ हिल जाता है। उत्तराखंड के पहाड़ उसे सहन कर सकने के लायक नहीं हैं। सड़कों और पनबिजली परियोजनाओं की वजह से पहाड़ इस कदर भंगुर हो चुके हैं कि मामूली तेज बरसात में भी भरभरा कर गिरने शुरू हो जाते हैं। ऐसे में सुरंग बन कर तैयार हो भी जाए, मुसाफिरों को कुछ दूरी कम तय करनी पड़े, आने-जाने में बेशक कम वक्त खर्च हो, पर जब पहाड़ ही नहीं बचेंगे, तो स्थानीय लोगों को इन परियोजनाओं का आखिर हासिल क्या होगा।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:14-11-23

प्रदूषण जागरूकता

संपादकीय

प्रदूषण निवारण की दिशा में हमारा सफर अभी बहुत लंबा है। दीपावली की सुबह बहुत अच्छी थी, राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली में साफ आसमान और खिली धूप के साथ वायु गुणवत्ता सूचकांक (एक्यूआई) सुबह 7 बजे महज 202 पर था, मगा रविवार बीतते सूचकांक महानगर के अनेक इलाकों में लगभग 500 अंक तक चढ़ गया। यह स्थिति जितनी दुखद है, उतनी ही चिंताजनक भी। अभी 7 नवंबर को ही देश की सर्वोच्च अदालत ने इशारा किया था कि बेरियम युक्त पटाखों पर प्रतिबंध लगाने का उसका आदेश हर राज्य को कदम उठाने को बाध्य करता है और यह आदेश सिर्फ दिल्ली-एनसीआर क्षेत्र तक सीमित नहीं है। दुर्भाग्य, आदेश की पालना पूरी तरह से नहीं हो सकी। आम लोगों को भी सोचना चाहिए कि आखिर आदेश, निर्देश, चेतावनी, खतरे के बावजूद प्रदूषण जानलेवा स्तर पर कैसे पहुंच गया? अब सर्वोच्च अदालत का रुख क्या रहेगा, यह देखने वाली बात होगी? शायद फिर नाराजगी का इजहार और सरकारों को नोटिस देने की नौबत आएगी, पर वास्तव में यह विषय आम लोगों से जुड़ा है।

अफसोस, सोमवार को दिल्ली बहुत प्रदूषित रही और पटना ने भी मुकाबला किया। अनेक लोग होंगे, जो प्रदूषण के लिए पटाखों को जिम्मेदार ठहराएंगे, पर सच्चाई यह है कि पटाखे अवसर विशेष से जुड़े हैं और जब पटाखे नहीं होते हैं, तब भी प्रदूषण का हाल बहुत बुरा रहता है। अत पटाखों को धर्म विशेष से जोड़कर देखना अनुचित है। हमें व्यापकता में सोचना चाहिए। कभी पराली, तो कभी वाहनों को, कभी पटाखों को जिम्मेदार ठहरा देने से काम नहीं चलेगा। हमारी सरकारों को राजनीति से ऊपर उठकर प्रदूषण का उपचार करना चाहिए। विगत दस वर्षों से एक-दूजे को सरकारें बचकाने ढंग से जिम्मेदार ठहराती आ रही हैं। यह जिम्मेदारी से बचने का नहीं, आगे बढ़कर जिम्मेदारी लेने का समय है। विशेषज्ञों की मदद से समग्र नीति बनाकर प्रदूषित राज्यों व शहरों को मार्ग दिखाना होगा। अगर यह राष्ट्रीय राजधानी की बड़ी समस्या भी है, तो समाधान की दिशा में जिम्मेदारी का एहसास भी राष्ट्रीय होना चाहिए। प्रदूषण को सिर्फ दिल्ली की समस्या मानने से समाधान नहीं होगा। यह महानगर एक ही जगह लाखों लोगों को रोजगार देता है, यहां देश भर से लोग आते हैं, तो क्या देश भर के लोगों को इसके बारे में नहीं सोचना चाहिए?

हालांकि, स्थानीय स्तर पर शासन-प्रशासन से जुड़े निकाय अगर वैज्ञानिक आधार पर काम कर सकें, तो प्रदूषण का खतरा टल सकता है। यदि कोई शहर आबादी का बोझ नहीं संभाल पा रहा है, तो उसके भार को हल्का करने के बारे में सोचना चाहिए। यह सुनने में कैसा लगता है कि तेज बढ़ते भारत की राजधानी दुनिया का सबसे प्रदूषित शहर है? दो-तीन दिन पहले अगर बारिश न हुई होती, तो दिल्ली प्रदूषण का कैसा खतरनाक कीर्तिमान बनाती, यह सोचकर ही किसी भी संवेदनशील नागरिक को बेचैनी होगी। यह समय दोषारोपण का कतई नहीं है। ऑड-इवन पर अब विवाद है, पर दिल्ली सरकार 14 नवंबर से 14 दिसंबर तक खुले में कुछ भी जलाने पर पाबंदी लगाने जा रही है, तो यह स्वागतयोग्य है। ऐसे ही, व्यापक कदम उठाकर हम प्रदूषण से लड़ पाएंगे। प्रदूषण के खिलाफ जन-जागरूकता अभियान भी ठीक उसी तरह से चलाना पड़ेगा, जैसे स्वच्छता के लिए चलाया गया। प्रदूषण के खिलाफ जन-भागीदारी को प्रोत्साहित करना पड़ेगा, तभी लोग प्रदूषण के खिलाफ नवाचार के साथ आगे आएंगे।

Date:14-11-23

सुरंग हादसे में कहीं फिर न दब जाएं पुराने सवाल

ए के शुक्ला, (पूर्व प्रमुख, भूकंप विज्ञान, मौसम विभाग)

उत्तरकाशी की ताजा घटना ने दो साल पहले उत्तराखंड के ही तपोवन सुरंग हादसे की याद ताजा कर दी। उसमें भी कई मजदूरों की जान पर बन आई थी, जिनको बाहर निकालने के लिए भारी मशक्कत करनी पड़ी। हालांकि, दोनों घटनाओं में एक बुनियादी फर्क यह है कि तपोवन हादसे में ग्लेशियर टूटने के कारण टनल में पानी के तेज बहाव के साथ गाद जमा हो गई थी और मजदूर फंस गए थे, जबकि उत्तरकाशी हादसे की वजह तकनीकी, और कुछ हद तक लापरवाही मानी जा रही है। यह घटना क्यों और कैसे हुई, इसका पूरा विवरण को जांच के बाद ही सामने आएगा, पर इस हादसे ने पर्यावरण बनाम विकास की बहस को एक बार फिर जिंदा कर दिया है।

पहाड़ के बारे में कहा जाता है कि यहां छोटी सी भौगोलिक घटना भी काफी असर डालती है, चाहे उसका प्रभाव तुरंत पडे या कुछ दिनों के बाद। इसका अर्थ यह है कि अगर पहाड़ पर हल्की तीव्रता का भी कोई भूकंप आता है, तो स्थानीय संरचना की वजह से यह जरूरी नहीं है कि वह तत्काल अपना असर दिखाए। इसमें कुछ दिनों या महीनों का वक्त लग सकता है। इसी तरह, मानवीय त्रुटियों का असर भी तुरंत नहीं दिख सकता। और जब पहाड़ की संरचना कमजोर हो, तो ऐसी परिस्थितियां काफी खतरनाक साबित हो सकती हैं। लिहाजा, सोचने का विषय यह है कि पहाड़ आखिर कमजोर क्यों पड़ते जा रहे हैं? यह सही है कि हिमालय की बनावट इसे दुनिया की सबसे नई और कमजोर पर्वत-शृंखला बनाती है, क्योंकि यह पहाड़ इंडियन और यूरेशियन प्लेट्स के आपस में टकराने से बना है, जो आज भी जारी है। मगर यह अब अनियोजित विकास की कीमत भी चुका रहा है। हिमालय क्षेत्र में जल-विद्युत परियोजनाओं, सड़कों व रेल-पटरियों का जाल बिछाया जा रहा है। चार धाम परियोजना को लेकर तमाम तरह के सवाल उठते रहे हैं। कहा जा रहा है कि अगले एक दशक में उत्तराखंड में 66 टनल बनाने की योजना है, जिनमें से 18 चालू भी हो गए हैं। जोशीमठ में ही जब घरों में दरारे पड़ने के मामले सामने आए थे, तब भूवैज्ञानिकों का मानना था कि मानव-जनित कार्यों के कारण करीब 6,000 फुट की ऊंचाई पर स्थित चमोली का यह शहर कई जगहों पर धंस रहा है। उत्तराखंड आपदा प्रबंधन प्राधिकरण ने भी कुछ इसी तरह के तर्क दिए थे। ये सब तस्दीक कर रहे हैं कि कहीं न कहीं चूक जरूर हो रही है, जिस पर तत्काल ध्यान देना होगा।

हालांकि, इसका यह अर्थ कतई नहीं है कि पहाड़ की ऊंचाई पर विकास के काम नहीं होने चाहिए। बुनियादी सुविधाओं के अभाव के कारण ही अब कई पहाड़ी गांव वीरान हो चुके हैं। यहां गांव के गांव खाली हैं। इसलिए, पहाड़ पर रहने वालों को भी बिजली, पानी, सड़क आदि की सुविधाएं मिलनी चाहिए। मगर हां, इस विकास की रूपरेखा पर गहन विचार-विमर्श की जरूरत है। अनियोजित विकास पर्वतों पर ही नहीं, मैदानी इलाकों पर भी भारी पड़ सकते हैं। विशेषकर, पहाड़ अगर हिमालय के हों, क्योंकि इसके नीचे करीब 20 मिलीमीटर प्रतिवर्ष की गति से इंडियन प्लेट आज भी यूरेशियन प्लेट के नीचे घुस रही हैं। इस कारण इसकी सतही संरचना एकमुश्त पत्थर जैसी नहीं है, बल्कि बड़े-बड़े बोल्डर पत्थर मिट्टी से बंधे हैं। ऐसे में, पहाड़ों को काटकर किए जाने वाले निर्माण इसकी मजबूती की परीक्षा लेने लगते हैं। यह तो भला हो 2005 में किए गए नीतिगत बदलाव का कि आपदा प्रबंधन अधिनियम बनाकर यह तय किया गया कि आपदा आने से पहले के बचाव-उपायों पर हमें ज्यादा ध्यान देना चाहिए।

फिलहाल, उत्तराखंड में सड़क, रेल, जलविद्युत से जुड़ी कई तरह की परियोजनाएं चल रही हैं। इनमें न जाने कितनी सुरंग बनाने की जरूरत होगी। ऐसे में, इस तरह के हादसे संकेत हैं कि साल 2005 के अधिनियम का शायद ईमानदारी से पालन नहीं किया जा रहा। हमें इस पर गौर करना होगा, साथ ही, निर्माण-कार्यों से पहले भू-तकनीक पहलू का भी विशेष ध्यान रखना होगा। इन इलाकों को लेकर खास संवेदनशीलता की दरकार है। हमें पहाड़ों के लिए ऐसा विकास चाहिए, जिससे यहां की भौगोलिक बनावट अक्षुण्ण रहे और यहां की पारिस्थितिकी को भी चोट न पहुंचे।